भाद्र शुक्ल २, शनिवार, दिनांक : १-९-१९६२
काव्य - २६ से ३१, प्रवचन नं.-०६

## काव्य २६

स्वर्भानुरर्कस्य हविर्भुजोऽम्भः,
कल्पान्तवातोऽम्बुनिधेर्विघातः।
संसारभोगस्य वियोगभावो,
विपक्षपूर्वाभ्युदयास्त्वदन्ये॥

रवि को राहू रोकता है, पावक को वारि बुझाता है।
प्रलयकाल का प्रबल पवन, जलनिधि को नाच नचाता है॥
ऐसे ही भव-भोगों को, उनका वियोग हरता स्वयमेव।
तुम सिवाय सबकी बढ़ती पर, घातक लगे हुए हैं देव॥

अन्वयार्थ — ( स्वर्भानुः ) राहु, ( अर्कस्य ) सूर्य का; ( अम्भः ) पानी, ( हविर्भुजः ) अग्नि का; ( कल्पांतवातः ) प्रलयकाल की वायु, ( अम्बुनिधेः ) समुद्र का तथा ( वियोग-भावः ) विरहभाव, ( संसारभोगस्य ) संसार के भोगों का ( विघातः ) नाश करनेवाला है। इस प्रकार ( त्वदन्ये ) आपसे भिन्न सब पदार्थ ( विपक्षपूर्वाभ्युदयाः सन्ति ) विनाश के साथ ही उदय होते हैं।

भावार्थ — हे प्रभो! संसार के सब पदार्थ अनित्य हैं, सिर्फ आप ही सामान्यस्वरूप की अपेक्षा नित्य हैं अर्थात् आप जन्म-मरण से रहित हैं और आपकी यह विशुद्धता भी कभी नष्ट नहीं होती।

### काव्य - २६ पर प्रवचन

यह ऋषभदेव भगवान की स्तुति है। महाकवि धनंजय (कृत) 'विषापहार स्तोत्र'। वास्तव में तो यह आत्मा की स्तुति है। व्यवहार से ऐसे ऋषभदेव भगवान को लक्ष्य करके मिथ्यात्व अथवा राग-द्वेषादि के जहर को उतारनेवाली यह स्तुति है।

**मुमुक्षु :** परद्रव्य तो कुछ कर नहीं सकता।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** परद्रव्य इसमें कुछ नहीं कर सकता, यह तो बात बराबर है, तथापि व्यवहार से उसे पुण्य का उदय हो, धर्म के आराधक जीव को, ऐसे विकल्प उस भूमिका में सत्य के होते हैं। उसके कारण बाह्य अभ्युदय अनुकूल हो और प्रतिकूलता कोई टल जाये, परन्तु इस बात की यहाँ मुख्यता नहीं है। नवनीतभाई! उसकी यहाँ मुख्यता नहीं है। यहाँ तो मुख्यता आत्मा के आराधन की मुख्यता है।

उसे लक्ष्यकर पहले २५ (काव्य) में तो ऐसा कहा कि हे भगवान! आपने तो एक प्रकार का ही मोक्षमार्ग प्ररूपित किया है। अन्यमति के अन्य देवों ने अनेक प्रकार के मोक्षमार्ग के कथन किये हैं। वह वस्तु देखने पर नहीं कि वस्तु का क्या स्वरूप है और उसमें ही सब बल देख रहे हैं। आपने तो एक मोक्ष का मार्ग अखण्डानन्द अपरिमित चैतन्य प्रभु की श्रद्धा-ज्ञान और आराधन एक ही प्रकार का मार्ग है। मोक्ष के मार्ग दो कहे हैं जैनशास्त्र में, वह भी कथनमात्र है। वस्तुस्वरूप नहीं। इसलिए हे परमात्मा! आप ही एक मोक्ष के मार्ग के कहनेवाले और परमात्मपद प्राप्त आप ही हो, ऐसा मैंने निर्णय किया है। इस प्रकार कवि भक्ति में भगवान की स्तुति करते हैं।

२६वीं।

**स्वर्भानुरर्कस्य हविर्भुजोऽम्भः,**
**कल्पान्तवातोऽम्बुनिधेर्विघातः।**
**संसारभोगस्य वियोगभावो,**
**विपक्षपूर्वाभ्युदयास्त्वदन्ये॥**

**रवि को राहू रोकता है, पावक को वारि बुझाता है।**
**प्रलयकाल का प्रबल पवन, जलनिधि को नाच नचाता है॥**
**ऐसे ही भव-भोगों को, उनका वियोग हरता स्वयमेव।**
**तुम सिवाय सबकी बढ़ती पर, घातक लगे हुए हैं देव॥**

देखो, एक स्तुति।

**अन्वयार्थ — राहु, सूर्य का घातक है।** राहु... राहु। वह सूर्य का घात करके

ग्रहण करता है न, ग्रहण? राहु सूर्य का घातक। **पानी अग्नि का;....** घातक अथवा पानी का अग्नि घातक। पानी को अग्नि घात करती है। ठण्डे पानी को। **प्रलयकाल की वायु, समुद्र का....** और प्रलयकाल की वायु समुद्र को नचाती है। आया था न उसमें? पानी डोलमडोला प्रलयकाल में, सागर का—समुद्र का पानी डोलमडोला चलता है। हे भगवान! और **विरहभाव, संसार के भोगों का नाश करनेवाला है।** संसार के भोग मिले, उसमें उनका वियोग उनका नाश करता है। संसार के भोग विपक्ष / शत्रुसहित हैं। सूर्य को राहु शत्रु है, पानी को अग्नि शत्रु है, समुद्र को प्रलयकाल का वायु शत्रु है और संसार के संयोग को वियोग शत्रु है। परन्तु हे नाथ! **इस प्रकार आपसे भिन्न सब पदार्थ....** आप से दूसरे भिन्न पदार्थ **विनाश के साथ ही उदय होते हैं।** नाशवान का वियोग लेकर ही वे उदय होते हैं। समझ में आया?

तत्त्वार्थसार में कहा है न अनित्य की बात लेते हुए। अनित्य भावना में। प्रभु! यह शरीर जब जन्म होता है तो वह जन्म हुआ, उससे पहले अनित्य के गोद में लेता शरीर उत्पन्न होता है। माता गोद में बाद में लेती है। बालक का जन्म होता है, वह तो जन्म से पहले ही कहते हैं कि वह माता तो गोद में बाद में लेगी, परन्तु अनित्यता ने तो जहाँ शरीर जन्म हुआ, वहाँ गोद में शरीर को ले लिया है। समझ में आया? शरीर की अनित्यता बताते हैं।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नाश। एक समय घटने लगा एकदम। जहाँ जन्मे अभी माता तो बाद में हाथ में लेगी और गोद में लेगी। अनित्यभाव अनित्य ने शरीर को गोद में लेकर नाश करने की तैयारी हो रही है। पहले समय से।

यहाँ कहते हैं, प्रभु! जगत के बाहर के उदय, उनके साथ विपक्ष अर्थात् शत्रुसहित सब उदय होते हैं। आपका ऐसा उदय है कि जो आपका आराधन करे, उसे विपक्ष / शत्रु कोई नहीं हो सकता। समझ में आया? दूसरे प्रकार से कहें तो इस आत्मा के अतिरिक्त पुण्य-पाप आदि परिणाम हैं न, पुण्य के? पुण्यभाव के? यह उसका आराधन करनेवाले, सेवन करनेवाले को वह पाप शत्रु है। पाप का उदय उसे आये बिना रहेगा

नहीं। समझ में आया? परन्तु हे नाथ! चिदानन्दमूर्ति प्रभु! आपका आराधन जो करे अखण्ड आनन्द का सेवन श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र से, उसे कोई विपक्ष पीछे है नहीं। समझ में आया?

यह लक्ष्मी का उदय। उसमें आता है न? 'भोगे रोग भयं, कुले च्युति भयं।' वह भर्तृहरि में श्लोक में आता है। यह तो अपने आता है बनारसीदास में। बनारसीदास के समयसार नाटक में। सर्वत्र भय है, एक निर्भय आत्मा की उदात्तदशा में निर्भयता है। बाकी पुण्य का आराधन, पाप का आराधन, सब प्रतिकूल संयोग से नाशवान सब करनेवाले हैं। शास्त्र में न्याय देते हैं कि जिसने बहुत पुण्य किया न मिथ्यादृष्टि ने, पुण्य किया। लोग कहे न बहुत पुण्य करें फिर धीरे-धीरे पवित्रता पकेगी। बहुत पुण्य-शुभभाव करें, शुभभाव को बहुत करें तो धीरे-धीरे पवित्रता सम्यग्दर्शन प्रगट होगा। ऐसा अज्ञानी कहते हैं। उसे आचार्य कहते हैं, एक बार बात सुन तेरी। उस पुण्य के परिणाम में कदाचित् मिथ्यादृष्टि में शुभभाव बहुत हो जाये, इससे सातावेदनीय पन्द्रह कोड़ाकोड़ी की स्थिति बँध जाये। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि को इतनी स्थित नहीं होती। धर्मीजीव को संसार की स्थिति का लम्बा कर्म नहीं हो सकता। चैतन्यमूर्ति निर्विकल्प वीतरागस्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान का आराधन है, उसे जो शुभभाव होता है, उसमें अन्तः कोड़ाकोड़ी की सातावेदनीय की स्थिति (बँधती है)। सातावेदनीय, हों! जो पुण्य का बड़ा स्वरूप। सम्यग्दृष्टि को आत्मा निर्विकल्प अखण्डानन्द ध्रुव स्वभाव का आराधन करनेवाले, उसे कोई शुभभाव रहे और पुण्य बँधे तो थोड़ी स्थिति का बँधता है। सेठी! और जो अकेले राग का आराधन करता है और दृष्टि मिथ्या है, उसके शुभभाव की उत्कृष्टता में आ जाये (तो) पन्द्रह कोड़ाकोड़ी स्थिति कर्म की बँधती है। सातावेदनीय की (बँधती है)। वह पुण्य की स्थिति मिथ्यादृष्टि को लम्बी बँधती है। परन्तु विपक्षसहित है। वह पन्द्रह कोड़ाकोड़ी की स्थिति वह नहीं भोग सकता। कारण कि त्रस की स्थिति ही अभी दो हजार सागरोपम है। दो हजार सागर। और पन्द्रह कोड़ाकोड़ी की स्थिति बाँधी है परन्तु मिथ्यादृष्टिरूप से शुभभाव को आराध्य किया-सेवन किया है, इसलिए उसे पाप का मिथ्यात्व उदय और अशुभभाव आये बिना रहेगा नहीं। पन्द्रह कोड़ाकोड़ी स्थिति को तोड़कर अल्प स्थिति करके निगोद में स्थावर में

चला जायेगा। सेठी! सेठी को नया लगता है सब मानो यह। परन्तु यह दिगम्बर के पुराने व्यक्ति हैं। गर्भश्रीमन्त नामनिक्षेप से। समझ में आया?

इसलिए कि जिसकी दृष्टि में राग का प्रेम और राग की रुचि और संयोग में लाभ की बुद्धि है, ऐसे जीव को उत्कृष्ट शुभभाव आ जाये तो पन्द्रह कोड़ाकोड़ी की साता की बन्ध स्थिति हो जाती है। परन्तु इतनी रह नहीं सकती। क्योंकि उसे अशुभभाव ऐसा तीव्र आयेगा कि एकदम स्थिति तोड़कर नरक और निगोद में चला जायेगा। परन्तु प्रभु चैतन्य का जिसने आराधन किया है। आपका अर्थात् चैतन्य का। वह भगवान की स्तुति अर्थात् ही आत्मा की स्तुति। ऐसा आता है न? भगवान की भक्ति अर्थात् ही आत्मा की भक्ति। बीच में विकल्प हो, वह व्यवहारभक्ति कहने में आती है। अर्थात् चैतन्य की सेवा करनेवाला, ध्रुव चैतन्य प्रभु, यह उसे कदाचित् पुण्य—शुभभाव हो और अन्तःकोड़ाकोड़ी की स्थिति बँधे तो भी उसे विपक्ष नहीं है, कोई शत्रु नहीं है। उसके स्वभाव की स्थिरता द्वारा इतनी स्थिति भी तोड़कर शुद्धोपयोग को पाकर केवलज्ञान को प्राप्त करेगा। समझ में आया?

यह कहते हैं, **हे प्रभो! संसार के सब पदार्थ अनित्य हैं, सिर्फ आप ही सामान्यस्वरूप की अपेक्षा नित्य हैं....** बात तो यही कही है, व्यवहार से भगवान की स्तुति 'ऋषति गच्छति इति परमपदं इति ऋषभः' ऋषभ का अर्थ यह है—भगवान आत्मा ऋषति गच्छति परमपदं अपने पद को प्राप्त करे, उसे यहाँ ऋषभ कहा जाता है। चौबीस तीर्थंकर के अर्थ तो आत्मा में घटित होते हैं। नवनीतभाई! बाहर में व्यवहार से भक्ति भी होती है शुभराग। सर्वज्ञ परमात्मा की भक्ति सन्त-मुनि भी करते हैं। समन्तभद्राचार्य जैसे, कुन्दकुन्दाचार्य जैसे शुभराग होता है, तब त्रिलोकनाथ तीर्थंकर भगवान की स्तुति करते हैं। क्षायिक समकिती इन्द्र शकेन्द्र और उसकी शचि रानी एकभवतारी, वह भी नन्दीश्वर द्वीप में जाकर, भक्ति का विकल्प आता है, अन्दर का लक्ष्य और दृष्टि छोड़ता नहीं, वहाँ भी घुँघरु बाँधकर भगवान की शाश्वत प्रतिमायें, अष्टाह्निका के आठ दिन में, वहाँ बाहर महीने में तीन बार जाते हैं। नन्दीश्वर द्वीप में। और बालक की भाँति नृत्य करते हैं। स्तुति-भक्ति (करते हैं)। जानते हैं, समझते हैं कि

जड़ की क्रिया जड़ से होती है। जरा राग आया, वह पुण्यबन्ध का कारण है। मेरे स्वलक्ष्य से जितनी एकाग्रता हो, वह मुझे संवर और निर्जरा का कारण है। सेठी!

यहाँ कहते हैं कि हे नाथ! सामान्य स्वरूप की अपेक्षा से भगवान नित्य है। **अर्थात् आप जन्म-मरण से रहित हैं और आपकी यह विशुद्धता भी कभी नष्ट नहीं होती।** आपकी शुद्धता प्रगट हो, ऐसा चैतन्यस्वभाव को विकल्परहित का आराधन करे, उसकी शुद्धता को विरुद्धत करनेवाला जगत में कोई है नहीं। यह वास्तविक भक्ति प्रभु! आपकी ही करना सत्य है। बाकी यह अनित्यता की भक्ति और जिसका फल अनित्य मिले, वह कहीं भक्ति-स्तुति सच्ची नहीं है। यह २६ कही।

## काव्य २७

**अजानतस्त्वां नमतः फलं यत्,**
**तज्जानतोऽन्यं न तु देवतेति।**
**हरिन्मणिं काचधिया दधानः-**
**तं तस्य बुद्धया वहतो न रिक्तः॥**

**बिन जाने भी तुम्हें नमन, करने से जो फल फलता है।**
**वह औरों को देव मान, नमने से भी नहिं मिलता है॥**
**ज्यों मरकत को काँच मानकर, करगत करनेवाला नर।**
**समझ सुमणि को काँच गहे, उसके सम रहे, न खाली कर॥**

**अन्वयार्थ** — ( त्वाम् ) आपको ( अजानतः ) जाने बिना ही ( नमतः ) नमस्कार करनेवाले पुरुष को ( यत् फलम् ) जो फल होता है, ( तत् ) वह फल ( अन्यं देवता इति जानतः ) दूसरे को 'देवता है' — इस तरह जाननेवाले पुरुष को ( न तु ) नहीं होता। क्योंकि ( हरिन्मणिम् ) हरे मणि को ( काचधिया ) काँच की बुद्धि से ( दधानः ) धारण करनेवाला पुरुष, ( तं तस्य बुद्धया वहतः ) हरे मणि को हरे मणि की बुद्धि से धारण करनेवाले पुरुष की अपेक्षा ( रिक्तः न ) दरिद्र नहीं है।

**भावार्थ — हे भगवन्! जो आपको नमस्कार करता है, पर आपके स्वरूप को नहीं जानता; उसे भी जो पुण्यबन्ध होता है, वह किसी दूसरे को देवता माननेवाले पुरुष को नहीं होता। जिस तरह कोई अनजान मनुष्य हरितमणि को पहनकर, उसे काँच समझता है तो वह, दूसरे की निगाह में जो मणि को मणि समझकर पहन रहा है, उसकी अपेक्षा निर्धन नहीं कहलाता। वे दोनों एक जैसी सम्पत्ति के अधिकारी कहे जाते हैं; अतः श्रद्धा और विवेक के साथ प्राप्त हुआ अल्पज्ञान भी प्रशंसनीय है।**

## काव्य - २७ पर प्रवचन

२७ (श्लोक)।

**अजानतस्त्वां नमतः फलं यत्,**
**तज्जानतोऽन्यं न तु देवतेति।**
**हरिन्मणिं काचधिया दधानः-**
**तं तस्य बुद्धया वहतो न रिक्तः॥**

**बिन जाने भी तुम्हें नमन, करने से जो फल फलता है।**
**वह औरों को देव मान, नमने से भी नहिं मिलता है॥**
**ज्यों मरकत को काँच मानकर, करगत करनेवाला नर।**
**समझ सुमणि को काँच गहे, उसके सम रहे, न खाली कर॥**

ध्यान रखना यह स्तुति। क्या कहते हैं?

**अन्वयार्थ :- आपको जाने बिना ही....** बिना जाने अर्थात् अनुभव किये बिना। अनुभव न हुआ हो आपका। परन्तु आपका लक्ष्य बँधा हो। समझ में आया? लक्ष्य बराबर बँधा हो। अनुभव न हो। आपकी तत्त्वचर्चा, आपके चैतन्य की वार्ता। आता है न, एक बार भी चैतन्य की अनुभव की वार्ता सुने '**चित्तप्रसनेन्**'—चित् प्रसन्न से, वह भावि मोक्ष का भाजन है। वह अल्प काल में केवल (ज्ञान) लेगा। भले वर्तमान में उसे अनुभव न हो, परन्तु शुद्धनय का पक्ष करके उसकी तत्त्व और चर्चा और बारम्बार उसका श्रवण-मनन करता है।

**आपको जाने बिना....** अनुभव किये बिना, **नमस्कार करनेवाले पुरुष को....** परन्तु आपको नमन करने की उसकी योग्यता प्रगट हुई है। बारम्बार तत्त्व का बहुमान। विकल्प और राग तथा पर का बहुमान नहीं। निर्विकल्प भगवान का लक्ष्य, उसकी रुचि, उसका विवेक। ज्ञान भले थोड़ा हो। समझ में आया? उसके प्रति का झुकाव। उस **पुरुष को जो फल होता है, वह फल दूसरे को 'देवता है' — इस तरह जाननेवाले पुरुष को नहीं होता।** यह देव है, अन्य के माने हुए कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र को मानता है कि यह हमारे बराबर देव है। देव नहीं, उसे देव माने; गुरु नहीं, उसे गुरु माने; नहीं शास्त्र, उसे शास्त्र माने। इसकी अपेक्षा प्रभु! यह तेरी लक्ष्यवाली चीज़ जो आत्मा की, यह उसका फल कहीं कम नहीं है। उसको कुछ फले, ऐसा नहीं है और इसमें बड़ा फल प्राप्त होता है। समझ में आया?

**दूसरे को 'देवता है'—इस तरह जाननेवाले पुरुष को नहीं होता। क्योंकि हरे मणि को काँच की बुद्धि से धारण करनेवाला पुरुष,....** है तो हाथ में मणि। परन्तु जरा ख्याल है काँच का। विशेष विवेक आदि नहीं। **हरे मणि को काँच की बुद्धि से धारण करनेवाला पुरुष,....** जरा मूल पाठ से अर्थ में दूसरे प्रकार से लिया है। वास्तव में ऐसा है, ऐसा कहने से और दूसरे मिथ्यादेव को सच्चे देवरूप से मानता है, उसे सब उल्टा पड़ता है। सच्चे देव-गुरु-शास्त्र और सत् तत्त्व, दैवी शक्ति भगवान आत्मा, उसके लक्ष्य की चर्चा, उसकी भावना, उसकी विचारणा, उसका ऊहापोह, उसका अनुपया यह करनेवाले को अनुभव न होने पर भी उसका फल अज्ञानी, कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र को माननेवाले अथवा राग का आराधन करनेवाले, राग में लाभ लक्ष्य माँडकर रहनेवाले, उनकी अपेक्षा प्रभु! इसका बड़ा फल है। समझ में आया?

यहाँ ऐसा कहा है कि **हरे मणि को हरे मणि की बुद्धि से धारण करनेवाले पुरुष की अपेक्षा दरिद्र नहीं है।** क्या कहते हैं? एक हरि मणि पकड़ी है जानकर और एक ने हरि मणि जाने बिना पकड़ी है, परन्तु दोनों के पास ऋद्धि तो है। समझ में आया? एक हरि मणि यह सच्ची है, ऐसा जानकर पकड़ी है। इसी प्रकार एक ने आत्मतत्त्व को और सच्चे देव-गुरु-शास्त्र को पहिचानकर पकड़ा। और एक ने हरि

मणिरूप से काचबुद्धि से, उसकी कीमत का अनुभव जो चाहिए, वह हो सकता नहीं, तो भी प्रभु! जिसे सच्ची हरि मणि है और जानकर पकड़ा है, उसकी अपेक्षा हरि मणि को भले उसने अल्प ज्ञान में विशेष विवेक बिना पकड़ा है, परन्तु उससे अल्प ऋद्धिवाला है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। समझ में आया? दरिद्र नहीं है।

**भावार्थ :- हे भगवन्! जो आपको नमस्कार करता है, पर आपके स्वरूप को नहीं जानता;....** विशेष अनुभव नहीं। अनुभवमात्र नहीं, इतनी बात लेना। ऐसे तो जानता है। नहीं जानता, ऐसा नहीं। परन्तु ऐसे साक्षात्! स्व के वेदनसहित नहीं जानता। **उसे भी जो पुण्यबन्ध होता है, वह किसी दूसरे को देवता माननेवाले पुरुष को नहीं होता।** सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ प्रभु और आत्मा सर्वज्ञ प्रभु आत्मा, वह इसके लक्ष्य का करनेवाला-माननेवाला, उसके अतिरिक्त के कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र अल्पज्ञ को देव माननेवाला, कुदेव और कुगुरु को (देव और) गुरु माननेवाला, ऐसे **देवता माननेवाले पुरुष को नहीं होता।** उसे वह फल पुण्यबन्ध ऐसा होता नहीं।

धर्मी के लक्ष्यवाले को पुण्य और पवित्रता अल्प काल में प्राप्त होगी। परन्तु पुण्य भी ऐसा बँधता है कि जिसे अनन्त काल में नहीं प्राप्त ऐसी सामग्री भी वहाँ वीतराग की वाणी आदि का योग होता है। ऐसे मिथ्यादृष्टि को, राग का आराधन करनेवाले को ऐसा पुण्यफल और पुण्यबन्ध नहीं होता।

**जिस तरह कोई अनजान मनुष्य हरितमणि को पहनकर, उसे काँच समझता है तो वह, दूसरे की निगाह में जो मणि को मणि समझकर पहन रहा है,...** जानकर पहनता है, वह अजानकर। **उसकी अपेक्षा निर्धन नहीं कहलाता।** उसके हाथ में रत्न है। उसके हाथ में रत्न है, इसलिए इस अपेक्षा से उसे निर्धन नहीं कहा जाता। **वे दोनों एक जैसी सम्पत्ति के अधिकारी कहे जाते हैं;....** दोनों की सम्पदा एक अपेक्षा से समान कही जाती है। **श्रद्धा और विवेक के साथ प्राप्त हुआ अल्पज्ञान भी प्रशंसनीय है।** ऐसा कहते हैं। अनुभव बिना भी वास्तविक श्रद्धा और वास्तविक तत्त्व को पकड़ा है। आता है न शास्त्र में? शुद्धनय का पक्ष, अनादि काल से एक सेकेण्ड भी आया नहीं। यह तो अभी व्यवहार से लाभ होगा और निमित्त से लाभ होगा, राग की मन्दता करते-करते

लाभ होगा। अरे! तेरे कुदेव का सेवन है। वह देव का सेवन नहीं। दैवशक्ति आत्मा भगवान के लक्ष्य से जो काम चर्चा, ध्यान, विचारणा इत्यादि कर रहा है, वह समझकर ध्यानादि करता है। प्रभु! इससे कम नहीं कहलाता है। वह पूर्ण की प्राप्ति होने की उसे तैयारी है। ऐसा कहना चाहते हैं। समझ में आया इसमें कुछ?

**मुमुक्षु :** .....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** मिथ्यादृष्टि, परन्तु उसका लक्ष्य कहाँ है? जोर है, उसे स्वभाव ऊपर की बात। यही वस्तु.... यही वस्तु.... यही वस्तु। चैतन्य ज्ञायक अभेद अखण्ड वस्तु, वही मैं हूँ, ऐसा लक्ष्य जहाँ बँधा है, वह अल्प काल में अनुभव को प्राप्त करेगा। समझ में आया? वह अल्प ऋद्धिवाला नहीं कहलायेगा। ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐई! सेठी! अभी विचार में पड़ जाते हैं।

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** नहीं, परन्तु सम्यक्त्व के सन्मुख हो गया है। उसे भी अल्प ऋद्धिवाला कहने में नहीं आता। यहाँ तो ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

जो तीव्र मिथ्यादृष्टि, गृहीत मिथ्यादृष्टि है और उसके सन्मुख में पड़ा है, खोटे को सच्चा मानकर पड़ा है। वह सच्चे को बराबर अनुभव नहीं परन्तु लक्ष्य में बाँधकर डोर बाँधी है बराबर। समझ में आया? वह अल्प काल में मिथ्यात्व का नाश होकर, सम्यक् अनुभव करके केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष जायेगा। उसकी ऋद्धि भी अल्प है, ऐसा हम नहीं कहते। समझ में आया? देखो! यह विषापहार।

**श्रद्धा और विवेक के साथ प्राप्त हुआ अल्पज्ञान भी प्रशंसनीय है।** वास्तविक विवेक और वास्तविक श्रद्धा, उसका चैतन्य की ओर की निर्विकल्प की रुचि का जोर, रुचि का जोर, उसे कहते हैं रुचि का परिणमन उसको है। उससे हम अल्प नहीं कहते, प्रभु! क्योंकि देव के आराधन में वह गया है। और कुदेव का आराधन करनेवाले, उसे कुछ भी सच्चा फल मिलनेवाला नहीं है। कुदेव अर्थात् राग। शुभराग का सेवन करनेवाले नौवें ग्रैवेयक में गये ऐसे शुभभाव को सेवन किया, वह दिव्यशक्ति का सेवन नहीं, वह तो कुदेव का सेवन है। उसकी अपेक्षा इसका फल अलग प्रकार का है। सेठी!

## काव्य २८

प्रशस्तवाचश्चतुराः कषायैः-
दग्धस्य देवव्यवहारमाहुः।
गतस्य दीपस्य हि नन्दितत्वम्-
दृष्टं कपालस्य च मङ्गलत्वम्॥

विशद मनोज्ञ बोलनेवाले, पण्डित जो कहलाते हैं।
क्रोधादिक से जले हुए को, वे यों 'देव' बताते हैं॥
जैसे 'बुझे हुए' दीपक को, 'बढ़ा हुआ' सब कहते हैं।
और कपाल विघट जाने को, मङ्गल हुआ समझते हैं॥

अन्वयार्थ — ( प्रशस्तवाचः ) सुन्दर बोली बोलनेवाले ( चतुराः ) चतुर मनुष्य, ( कषायैः दग्धस्य ) कषायों से जले हुए पुरुष के प्रति भी ( देवव्यवहारम् आहुः ) देव शब्द का व्यवहार करना कहते हैं। सो ठीक ही है ( हि ) क्योंकि ( गतस्य दीपस्य ) बुझे हुए दीपक का ( नंदितत्वं ) 'बढ़ना' ( च ) और ( कपालस्य ) फूटे हुए घड़े का ( मङ्गलत्वम् ) 'मङ्गलपन' ( दृष्टम् ) देखा गया है।

भावार्थ — हे भगवन्! लौकिक मनुष्य रागी-द्वेषी जीवों को भी 'देव' शब्द से व्यवहार करते हैं, सो सिर्फ लोक व्यवहार से ही किसी बात की सत्यता नहीं होती क्योंकि लोक में कितनी ही बातों का उल्टा व्यवहार होता है।

जैसे कि जब दीपक बुझ जाता है, तब लोग कहते हैं, दीपक 'बढ़ गया' और जब घड़ा फूट जाता है, तब लोग कहने लगते हैं कि घड़े का 'कल्याण' हो गया।

---

काव्य - २८ पर प्रवचन

---

२८ (श्लोक)।

प्रशस्तवाचश्चतुराः कषायैः-
दग्धस्य देवव्यवहारमाहुः।
गतस्य दीपस्य हि नन्दितत्वम्-
दृष्टं कपालस्य च मङ्गलत्वम्॥

**विशद मनोज्ञ बोलनेवाले, पण्डित जो कहलाते हैं।**
**क्रोधादिक से जले हुए को, वे यों 'देव' बताते हैं॥**
**जैसे 'बुझे हुए' दीपक को, 'बढ़ा हुआ' सब कहते हैं।**
**और कपाल विघट जाने को, मङ्गल हुआ समझते हैं॥**

प्रत्येक गाथा में दृष्टान्त देकर बात को सिद्ध किया है। क्या कहते हैं?

**मुमुक्षु :** .....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** कितना सरस है, देखो न! प्रशंसा... प्रशंसा। क्या कहते हैं? इस जगत के बोलकाओ। बोलका समझते हो? बातूनी आता है न, भाई? पंचाध्यायी में। वाग्दूत आता है। .... कहते हैं। मेरे वचन के चातुर्य, वचन का बातूनी और वचन के विंझणे आत्मा को तोड़ डालनेवाले ऐसे वचन करे.... ऐसे वचन करे। चतुर मनुष्य वह संसार के चतुर। वे **कषायों से जले हुए पुरुष के प्रति भी देव शब्द का व्यवहार करना कहते हैं।** जिसमें राग पड़ा है, पुण्य की क्रिया पड़ी है, उसे लाभ मनाते हैं, वे बोलनेवाले चतुर। वे कषायवाले जीव को भी देव मानकर बैठे हैं। वे अज्ञान में चतुर हैं। समझ में आया?

क्या कहा? बातूनी, जिसे कषायभाव पड़ा है, उसे देव बता रहे हैं और अज्ञानी दूसरे विशेष कि जो रागभाव की क्रिया आराधते हैं, उसमें धर्म बता रहे हैं। वे बातूनी वाणी के चतुर जीव मूढ़ और अज्ञानी हैं। समझ में आया? वाणी की वक्रता की शैली से ऐसा कहे ऐसा देखे... ऐसा होवे... व्यवहार बिना निश्चय होता नहीं, राग बिना लाभ होता नहीं। ऐसी युक्ति और बराबर वचन की कला से फैलाते हैं। हे नाथ! ऐसे अज्ञानी इस राग को धर्म मनवा रहे हैं। राग से देवशक्ति प्रगट होगी, ऐसा मनवा रहे हैं। वे लौकिक देव ऐसे ही होते हैं और लौकिक चतुर ऐसे होते हैं। समझ में आया?

**देव शब्द का व्यवहार करना कहते हैं। सो ठीक ही है क्योंकि बुझे हुए दीपक का 'बढ़ना'....** नहीं कहते? दीपक बढ़ गया है। दीपक बुझावे न, बुझावे? दीपक बढ़ाया है। क्या कहते हैं तुम्हारे? दीपक बढ़ गया। देखो, लोक की विपरीतता! दीपक बढ़ गया। बुझ गया। बुझ गया हो, उसे क्या कहें? बुझा। दीपक बुझा उसे कहते हैं कि

बढ़ गया। जगत की विपरीतता तो देखो! समझ में आया?

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** यह तो ऐसा कि ऐसे अपमान.... यह जरा अपमान माने। अपशकुन माने। खबर है न! वह तो माँगने आवे न ब्राह्मण। अब तो सब कम हो गया। नहीं तो गाँव में ब्राह्मण माँगने आवे आटा। आटा। आटा न हो तो नहीं है, ऐसा वह न कहे। आज आटा अधिक है। यह तो हमारा अनुभव सुना हुआ है। प्रत्यक्ष यह सब बातें प्रत्यक्ष सुनी हुई है। उसमें कहीं किसी को पूछने जाने जैसा नहीं है। आज घी बहुत है। घी नहीं, ऐसा नहीं कहते। समझ में आया न? रस कम हो तो हो गया। हाय... हाय, यह तो क्या कहा? अपशकुन। अपशकुन कहलाता है। घी हो रहा है, ऐसा न कहे। बहुत घी है, इसलिए लेते आना। घी बहुत है, इसलिए लेते आना। देखो, जगत की विपरीतता! समझ में आया? और आटा बहुत है। वह ब्राह्मण समझ जाता है कि आटा बहुत है अर्थात् नहीं है। आटा नहीं, ऐसा कहे, तब तो हो गया। रोटी बिना मर जाऊँगा रंक होकर, ऐसा अपशकुन माने।

इसी प्रकार अज्ञानी यह राग और पुण्य की क्रिया के करनेवाले को देव माने, राग और पुण्य की शुभ क्रिया के करनेवाले को धर्म मनावे और उसमें से देवपना प्रगट होगा, ऐसा मनावे। भगवान! यह तो लौकिक की विपरीतता है। क्योंकि जब दीपक बुझे, तब बढ़ना कहते हैं। ऐसी विपरीतता इसकी है, ऐसा कहते हैं। और **फूटे हुए घड़े का 'मङ्गलपन' देखा गया है।** कल्याण हुआ। घड़ा फूटे न? क्या कहते हैं? मांगलिक हुआ। घड़ा फूटा तो मांगलिक हुआ। क्योंकि और घड़ा फूटा तो घर में से सब फूट जायेगा तो? वह तो मांगलिक हुआ। ऐसे उल्टे जीव घड़ा फूटने को कल्याण मानते हैं, दीपक को बढ़ा हुआ मानते हैं, ऐसे अज्ञानी राग से बढ़े हुए, शुभक्रिया के बढ़े हुए, पुण्य में बढ़े हुए बाहर के पूर्व के पुण्य के कारण प्रसिद्धता को प्राप्त, उसे देवपना मान रहे हैं और उसे धर्म मनवा रहे हैं। प्रभु! वह तो वचन के चतुर हैं, हों! वे वाणी के चतुर, ज्ञान के चतुर नहीं। सेठी! देखो न स्तुति भी भगवान के सामने, ऐसे की है न मन्दिर में? भगवान सामने विराजमान हैं ऋषभदेव प्रभु—प्रतिमा।

**भावार्थ :- हे भगवन्! लौकिक मनुष्य रागी-द्वेषी जीवों को भी 'देव' शब्द से व्यवहार करते हैं,....** राग हो, द्वेष हो, उसे भी देव शब्द से कहते हैं। **सो सिर्फ लोक व्यवहार से ही किसी बात की सत्यता नहीं होती....** ऐसे लोक व्यवहार से भी कुछ सत्यपना नहीं हो सकता। **क्योंकि लोक में कितनी ही बातों का उल्टा व्यवहार होता है।**

**जैसे कि जब दीपक बुझ जाता है, तब लोग कहते हैं, दीपक 'बढ़ गया'....** यह तो लोक का व्यवहार लौकिक उक्ति व्यवहार। ऐसे व्यवहारनय के कथन भी अन्यथा कहनेवाले हैं। कहा है या नहीं? व्यवहार कुछ भी निमित्त देखकर, अपेक्षा देखकर व्यवहार उल्टा ही बतलाता है। उल्टा बतलाता है और वचन की चतुराईवाले उसे स्थापित करते हैं। वह मिथ्यादृष्टि मूढ़ जीव, वे लौकिक के चतुर जैसे हैं। उन्हें सच्चा ज्ञान और तत्त्व का ज्ञान नहीं है।

**जब घड़ा फूट जाता है, तब लोग कहने लगते हैं कि घड़े का 'कल्याण' हो गया।** यह घड़े का कल्याण हो गया। उल्टा। इसी प्रकार अज्ञानी जीव किंचित् शुभभाव की क्रिया में बढ़े, राग में कुछ पाप का कम होकर... यह तो बढ़ गया। बहुत बढ़ा। धूल में भी बढ़ा नहीं, सुन न! शुभराग की क्रिया से बढ़े हुए को बढ़ा हुआ कहना, वह मिथ्यादृष्टि के लौकिक व्यवहार के कल्याण जैसे माने, घड़ा फूटा और कल्याण (माने), वैसी इसकी मान्यता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? इसकी मान्यता में कुछ सच्चाई है नहीं। सर्वत्र झूठ झूठ गप्प चलती है।

इसी प्रकार प्रभु उस पर्याय में, कदाचित् ऐसी उज्ज्वलता शुक्ललेश्या हो गयी। वह शुक्ललेश्या! नौवें ग्रैवेयक में गया, इन्द्राणी डिगाने आवे तो डिगे नहीं; और शरीर के खण्ड-खण्ड करे, तो क्रोध करे नहीं। परन्तु उसकी बुद्धि राग और पुण्य पर अन्दर में पड़ी है। प्रभु! उसे लौकिक में जैसे घड़ा फूटा और कल्याण कहे, उसी प्रकार यह राग और पुण्य में धर्म मान रहे हैं। राग को धर्म मान रहे हैं, राग को कल्याण मान रहे हैं। यह दीपक बुझ जाये वहाँ...। यह आत्मा का दीपक राग को धर्म मानने में, दीपक बुझ जाता है, तथापि उसे बढ़ता है, ऐसा कहनेवाले वे वचन के चातुर्य ऐसी चतुराई करा रहे हैं। कहो, समझ में आया? दृष्टान्त देखो दृष्टान्त यह। **घड़े का 'कल्याण' हो गया।** २८ हुई।

## काव्य २९

नानार्थमेकार्थमदस्त्वदुक्तम्,
हितं वचस्ते निशमय्य वक्तुः।
निर्दोषतां के न विभावयन्ति,
ज्वरेण मुक्तः सुगमः स्वरेण॥

नयप्रमाणयुत अतिहितकारी, वचन आपके कहे हुए।
सुनकर श्रोताजन तत्त्वों के, परिशीलन में लगे हुए॥
वक्ता का निर्दोषपना जानेंगे, क्यों नहिं हे गुणमाल।
ज्वर विमुक्त जाना जाता है, स्वर पर से सहजहि तत्काल॥

अन्वयार्थ — ( नानार्थम् ) अनेक अर्थों के प्रतिपादक तथा ( एकार्थम् ) एक ही प्रयोजनयुक्त ( त्वदुक्तम् ) आपके कहे हुए ( अदः हितं वचः ) इन हितकारी वचनों को ( निशम्य ) सुनकर ( के ) कौन मनुष्य ( ते वक्तुः ) आपके जैसे वक्ता की ( निर्दोषताम् ) निर्दोषता को ( न विभावयन्ति ) नहीं अनुभव करते? अर्थात् सभी करते हैं। जैसे ( यः ) जो ( ज्वरेण मुक्तः ) ज्वर से मुक्त हो जाता है, ( सः ) वह ( स्वरेण सुगमः ) स्वर से सुगम हो जाता है अर्थात् स्वर से उसकी अच्छी तरह पहिचान हो जाती है।

भावार्थ — आपके वचन नानार्थ होकर भी एकार्थ हैं। यह प्रारम्भ में विरोध मालूम होता है, पर अन्त में उसका इस प्रकार परिहार हो जाता है कि आपके वचन स्याद्वाद सिद्धान्त से अनेक अर्थों का प्रतिपादन करनेवाले हैं, फिर भी एक ही प्रयोजन को सिद्ध करते हैं अर्थात् पूर्वापरविरोध से रहित हैं।

हे भगवन्! आपके हितकारी वचनों को सुनकर यह स्पष्ट मालूम हो जाता है कि आप निर्दोष हैं क्योंकि सदोष पुरुष वैसे वचन नहीं बोल सकता। जैसे कि किसी की अच्छी आवाज सुनकर साफ मालूम हो जाता है कि यह ज्वर से मुक्त है क्योंकि ज्वर से पीड़ित मनुष्य का स्वर अच्छा नहीं होता।

काव्य - २९ पर प्रवचन

२९ (श्लोक)।

**नानार्थमेकार्थमदस्त्वदुक्तम्,**
**हितं वचस्ते निशमय्य वक्तुः।**
**निर्दोषतां के न विभावयन्ति,**
**ज्वरेण मुक्तः सुगमः स्वरेण॥**

आहा! प्रत्येक गाथा में दृष्टान्त!

**नयप्रमाणयुत अतिहितकारी, वचन आपके कहे हुए।**
**सुनकर श्रोताजन तत्त्वों के, परिशीलन में लगे हुए॥**
**वक्ता का निर्दोषपना जानेंगे, क्यों नहिं हे गुणमाल।**
**ज्वर विमुक्त जाना जाता है, स्वर पर से सहजहि तत्काल॥**

**अन्वयार्थ :- अनेक अर्थों के प्रतिपादक....** हे नाथ! हे सर्वज्ञप्रभु! अनेक अर्थों के अनेक नय और प्रमाण से आप वस्तु के कथन कहते हो। **तथा एक ही प्रयोजनयुक्त....** आपका प्रयोजन तो वस्तु का स्वरूप जैसा है, वैसा सिद्ध करने का प्रयोजन है। एक ही प्रकार। नित्य, अनित्य, एक, अनेक, अनेक प्रकार के पहलुओं से आप नय-प्रमाण से बात करते हो परन्तु वस्तुस्वरूप क्या है, उसे सिद्ध करने के आपके वाक्य।

अथवा बहुत प्रकार के कथन चरणानुयोग, कथानुयोग में आवे। राग ऐसा होता है, पुण्य ऐसा होता है परन्तु आपका प्रयोजन तो एक वीतरागभाव ही कराने का है। समझ में आया? सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ की वाणी में चारों अनुयोगों का सार, यह राग और निमित्त से उपेक्षा करके, स्वभाव की अपेक्षा कराना, वह प्रयोजन है। कथन भले चाहे जितने प्रकार के आवें, विविध प्रकार के हों, आता है न मोक्षमार्गप्रकाशक में? तुम विविध प्रकार के अर्थ करते हो न? और अन्यमति के विविध प्रकार के अर्थ करनेवाले को तुम मिथ्या सिद्ध करते हो। ऐसा आता है न, भाई!

**मुमुक्षु :** मोक्षमार्गप्रकाशक।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, मोक्षमार्गप्रकाशक में। सुन न! जो सर्वज्ञ परमात्मा अनेक प्रकार से कथन करे, उसमें हेतु एक ही है। चैतन्यमूर्ति निर्विकल्प भगवान की ओर झुकाने का (हेतु है)। कहीं राग को करना या राग में लाभ होगा या निमित्त को जोड़ना या मिलाना, ऐसा कथन वीतराग के चार अनुयोग में धर्म की प्रयोजन दृष्टि में, कहीं आता नहीं। और वे लोग तो घड़ीक में ऐसा कहे—'अपुत्रस्य गति नास्ति।' आता है न? अरे! जिसे पुत्र न हो वह बांझ। और क्या कहलाता है वह? श्राद्धकर्म। श्राद्धकर्म न करे तो उसकी गत अच्छी नहीं होती। एक ओर ऐसा कहे और एक ओर अमुक जैसे ब्रह्मचारी थे, वे थे और ऐसा कहे। ऐसे आत्मा के अन्दर में लो (तो) एक ओर पुण्य को हेय बतावे, दूसरी ओर पुण्य को आदरणीय बताकर लाभ बतावे। भगवान! इसके ठिकाना बिना के कथन हैं। अज्ञानी के कथन मिथ्यादृष्टि के, ग्यारह अंग और नौ पूर्व पढ़ा हो परन्तु वह वचन की चतुराई से दूसरी ही बातें कर रहे हैं।

**मुमुक्षु :** व्यवहार से उपादेय?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** व्यवहार से उपादेय का अर्थ क्या? है, उसका स्वीकार, इसका नाम उपादेय है। समझ में आया? जैसे सर्वज्ञ हैं, उनका स्वीकार करना, वह सर्वज्ञ की स्तुति है; उसी प्रकार व्यवहार है, ऐसा स्वीकार करना, उसका नाम उपादेय है। उपादेय (अर्थात्) आदरणीय रूप से, ऐसा नहीं।

**मुमुक्षु :** ज्ञान करना, वह उपादेय है?

**पूज्य गुरुदेवश्री :** ज्ञान करना, इसका (नाम) उपादेय है। जाननेयोग्य है, ऐसा है, ऐसा जानना, वह उपादेय। आदरणीय-फादरणीय है नहीं। परन्तु वचन के चतुर अज्ञानी अनेक प्रकार के अर्थ करके विपरीतता करते हैं। प्रभु! आपके कथन में अनेक प्रकार होते हैं परन्तु एक प्रयोजन है, यह बात आपके ख्याल में से हटती नहीं। समझ में आया?

**आपके कहे हुए इन हितकारी वचनों को सुनकर....** हितकारी वचन सुनकर परमात्मा! **कौन मनुष्य आपके जैसे वक्ता की निर्दोषता को नहीं अनुभव करते?** आप निर्दोष वक्ता हो। आपकी चाहे जो वाणी निकलती हो, परन्तु एक वीतरागस्वभाव की

दृष्टि, वीतरागता का ज्ञान अन्तर्दृष्टि का और वीतरागी चारित्र, यही कहने का आपका आशय वह आपके वक्तापने की निर्दोषता कौन तत्त्वज्ञ विचारक नहीं परखे ? समझ में आया ? **निर्दोषता को नहीं अनुभव करते ?** आपकी वाणी ऐसी अन्दर से निकले, उसके न्याय से अन्दर जो प्रयोजन सिद्ध करना है, विचारक परिशीलन करनेवाले विचारकों को आपकी निर्दोषता को परख लेते हैं।

**जो ज्वर से मुक्त हो जाता है,....** बुखार चढ़ा हो, बुखार। ताव समझते हो न ? बुखार। चार और पाँच डिग्री बुखार। गले में उसकी आवाज ही बिगड़ गयी हो। सेठी! क्या है, भाई ? तुमको बुखार है ? मुँह लाल हो गया हो। यह बुखार-बुखार चढ़ता है न! कण्ठ में कुछ ठिकाना नहीं होता। बुखार लगता है। और जिसका बुखार छूट गया हो, बुखार चला गया और फिर उसका स्वर—ध्वनि निकले, (उस) स्वर से पहिचाना जाता है कि इसे बुखार नहीं है। इसे बुखार नहीं है। बुखार उतर गया है। बराबर है ?

अब सिद्धान्त। **वह स्वर से सुगम हो जाता है....** उसके स्वर से उसकी परीक्षा सरल हो जाती है कि यह स्वर निकला, इसे बुखार नहीं लगता। **स्वर से उसकी अच्छी तरह पहिचान हो जाती है।** इसी प्रकार अज्ञानी के रोगवाले अज्ञान से भरपूर उसकी वाणी का स्वर और आप निर्दोषता के स्वर में, प्रभु! अन्तर है। आपकी वाणी और अज्ञानी की वाणी में पूर्व-पश्चिम का अन्तर है। बुखार चढ़े हुए की ध्वनि ऐं.... ऐं.... करती निकलती है और बुखार बिना की वाणी, वह स्वर ही ऐसा कहता है कि इसे बुखार नहीं है।

इसी प्रकार आपकी वाणी में निर्दोषता प्रगट होने की जो बात की है। चिदानन्द भगवान निर्दोष परमात्मपद कन्द है, केवलज्ञान का कन्द है, उसे प्रगट करो, राग और अल्पज्ञ का नाश करो, ऐसी आपकी निर्दोष वाणी, वह आपकी निरोगता को बतला रही है। निरोगता अर्थात् परमात्मदशा है यह। निरोगता अर्थात् परमात्मा। और वे सब रोगी हैं। समझ में आया ? कहीं न कहीं विपरीतता घुसाकर नैगमनय से ऐसा होता है और संग्रहनय से ऐसा होता है और एवंभूतनय की यह सब तुम बातें करो। सुन न अब। इस नैगमनय से धर्म होता है। णमो अरिहंताणं गिने उसे भी धर्म होता है। कौन गिनता है ?

णमो अरिहंताणं कहना किसे? 'नमः समयसाराय।' चिदानन्द परमात्मा में अन्दर नमा और विकार की प्रसन्नता जिसके हृदय में से गयी, यह उसने णमोकार गिना और उसने णमो अरिहन्ताणं किया, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? ऐसे तो णमो अरिहंताणं कर-करके अभव्य नहीं गिनता? अभव्य गिनता है या नहीं?

समन्तभद्राचार्य कहते हैं भगवान की स्तुति करते हुए (कहते हैं)। हे नाथ! वह अभव्य ग्रन्थीवाला आपको नहीं नमता। अभव्य। अभव्य जैसा फिर दृष्टान्त सब लेना। समझ में आया? क्योंकि आप तो वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा हो, निर्दोष परमात्मदशा को प्रगट किये हुए हो। जिसे राग का प्रेम और राग की रुचि और निमित्त के संग की रुचि है, ऐसे आपको नमन नहीं करते। वीतरागभाव में नहीं आ सकते। यह ग्रन्थीसत्त्व उस अभव्य को कहा है। जिसने राग की गाँठ लगायी है, वह ग्रन्थीसत्त्व वीतराग को नहीं नम सकता। नवनीतभाई! समझ में आया? वह आपको नहीं नमता।

उसमें आता है न? तुम्हारे विवाह में नहीं आता? 'नहीं नमे रे नहीं नमे, बड़े का लड़का नहीं नमे।' गप्प ही गप्प चलाये हैं। समझे न? यह सब सुना हुआ हो न। गप्प ही गप्प। कहाँ गये फावाभाई? वहाँ सब बातें करे। बड़े का लड़का नहीं नमे। फावाभाई के विवाह प्रसंग में था न! भाई! सब देखा हुआ है। और खुशालभाई के विवाह में। इन दो के विवाह में देखा हुआ है। दूसरे के विवाह में अपने बहुत सबका सब पूरा देखा नहीं। इसमें (संवत्) १९६४ में देखा था और एक १९६८ में। दो में सब देखा हुआ कि यह नहीं नमे रे नहीं नमे। क्या है परन्तु अब? इसमें नमे तो भी क्या और न नमे तो भी क्या?

चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा राग को आदर करके तीन काल में नमेगा नहीं। वह बड़े का लड़का! वह तीर्थंकरपद लेनेवाला! वह केवलज्ञान की पर्याय को प्रगट करनेवाला चैतन्यघन, वह राग को आदर करके कभी नहीं नमेगा। समझ में आया? इसलिए कहते हैं कि भगवान! उसकी वाणी में अन्तर पड़ जाता है, हों! बुखार उतरे हुए का स्वर, उस स्वर से पहिचाना जाता है। उसमें सत्तास्वरूप में नहीं आता? सत्तास्वरूप में। कमरा। सत्तास्वरूप है न? कैसा? भागचन्दजी छाजेड़ (कृत)। जयपुर में हो गये न तुम्हारे? या

आसपास में ? यह मन्दसौर-मन्दसौर। यह मन्दसौरवाले आये हैं या नहीं ? मन्दसौर में एक भागचन्दजी छाजेड़ हुए हैं। उन्होंने एक सत्तास्वरूप बनाया है। उसमें भगवान की पहिचान के लिये कहा, प्रभु! एक कमरा बन्द हो और उसमें एक विचिक्षण पुरुष अन्दर वीणा का बजानेवाला, देशी ढग, मूर्च्छा, ग्राम सब जाननेवाला। जिस जगह ऐसा बजावे तो एकदम.... सामने मूर्च्छा आ जाये। एकाकार हो जाये। ऐसा गानेवाला। वह कमरा बन्द है। दूर से एक व्यक्ति चला जाता है, परन्तु उसका जाननेवाला है। तब पहिचानता है कि ओहो! वह उसे देख नहीं सकता। सुननेवाला उस मनुष्य को देख नहीं सकता। मकान बन्द है। परन्तु उसकी ध्वनि के धार से यह कोई विचिक्षण तार का बजानेवाला है और उसे देशी और बराबर बैठी हुई है। समझ में आया ?

इसी प्रकार वाणी के संयोग की ध्वनि से, वह है तो वाणी का संयोग.... समझ में आया ? वह भगवान प्रत्यक्ष ज्ञानी और सम्यग्दृष्टि को कुछ समवसरण में दिखते नहीं। उनका सर्वज्ञरूप है, वह कहीं दिखता नहीं। जिस प्रकार वह कमरे में बैठा हो, वह दिखता नहीं परन्तु उसकी ध्वनि देशी की धुन, देशी की धुन बजाता हो ऐसी-ऐसी.... कोई जबरदस्त कला का कलाबाज अन्दर है। ऐसा नाथ! आपकी वाणी में जो पूर्वापर अविरोधता आती है, भले आप न दिखाई दो परन्तु यह कलाबाज केवली है, ऐसी परीक्षा किये बिना समकिती रहता नहीं। समझ में आया ? यह केवल (ज्ञानी) कलाबाज हैं। जिन्हें केवलज्ञान की कला पूर्णानन्द की प्रगट हुई, उनकी ध्वनि ऐसी होती है। पूर्ण.... पूर्ण.... पूर्ण.... पूर्ण.... सब बात है। उसे ख्याल में आने पर कि इस वाणी के स्वर से भगवान को पहिचान ले। इसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि बुखार उतरे हुए की वाणी के स्वर से, यह निरोगी है, ऐसा पहिचान ले। **स्वर से उसकी अच्छी तरह पहिचान हो जाती है।**

**भावार्थ :- आपके वचन नानार्थ होकर भी....** अनेक प्रकार से बतावे नित्य-अनित्य, शुद्ध-अशुद्ध इत्यादि। **यह प्रारम्भ में विरोध मालूम होता है,....** शुरुआत में एक वस्तु नित्य और अनित्य, वही शुद्ध और वही अशुद्ध, ऐसा। **पर अन्त में उसका इस प्रकार परिहार हो जाता है कि आपके वचन स्याद्वाद सिद्धान्त से अनेक अर्थों का**

**प्रतिपादन करनेवाले हैं, फिर भी एक ही प्रयोजन को सिद्ध करते हैं....** या वस्तु अखण्डानन्द प्रभु को सिद्ध करते हैं और या ये सब बातें करने पर भी, वीतरागभाव को सिद्ध करते हैं। **अर्थात् पूर्वापरविरोध से रहित हैं।**

**हे भगवन्! आपके हितकारी वचनों को सुनकर यह स्पष्ट मालूम हो जाता है कि आप निर्दोष हैं....** आप निर्दोष हैं। देखो न! समन्तभद्र ने कहा न, प्रभु! आपने वाणी में ऐसा कहा न, कि जो अनन्त द्रव्य हैं, अनन्त पदार्थ, उनके एक सेकेण्ड का असंख्यवाँ भाग एक समय, उसमें उत्पाद-व्यय और ध्रुव तीन। वह आपने कहा। हमें ख्याल में आ गया कि प्रभु! एक समय में तीन पकड़े, वह तुम सर्वज्ञ हो। क्या कहा? समय एक, एक सेकेण्ड का असंख्यवाँ भाग और उसमें तीन सत् को आपने देखा। एक पर्याय नयी उत्पन्न हो उसे, पुरानी जाये उसे, ध्रुव रहे उसे। समय एक। समय के खण्ड नहीं, तथापि उस काल में ऐसे तीन हैं, ऐसा देखा। यह सर्वज्ञ के अतिरिक्त नहीं हो सकता प्रभु! जा। समझ में आया? तुम्हारी वाणी में से हमने निरोगता केवलज्ञान की तुम्हारी है, ऐसा परख लिया है। नवनीतभाई! स्वयंभूस्तोत्र में है न? चौबीस तीर्थंकर की स्तुति। समन्तभद्राचार्य ने की है न? समन्तभद्राचार्य, स्वयंभूस्तोत्र, स्वयंभूस्तोत्र।

**यह स्पष्ट मालूम हो जाता है कि आप निर्दोष हैं क्योंकि सदोष पुरुष वैसे वचन नहीं बोल सकता।** जिस बुखार हो, कण्ठ पकड़ा गया हो, सर्दी हुई हो, वह वाणी स्पष्ट निकल सके नहीं। इसी प्रकार अज्ञानियों की—राग में पकड़े हुए की वाणी सच्ची निकल नहीं सकती। **जैसे कि किसी की अच्छी आवाज सुनकर साफ मालूम हो जाता है कि यह ज्वर से मुक्त है क्योंकि ज्वर से पीड़ित मनुष्य का स्वर अच्छा नहीं होता।**

## काव्य ३०

न क्वापि वाञ्छा ववृते च वाक्ते,
काले क्वचित्कोऽपि तथा नियोगः।
न पूरयाम्यम्बुधिमित्युदंशुः,
स्वयं हि शीतद्युतिरभ्युदेति॥

यद्यपि जग के किसी विषय में, अभिलाषा तब रही नहीं।
तो भी विमल वाणी तव खिरती, यदा कदाचित् कहीं कहीं।
ऐसा ही कुछ है नियोग यह, जैसे पूर्णचन्द्र जिनदेव।
ज्वार बढ़ाने को नहीं उगता, किन्तु उदित होता स्वयमेव॥

अन्वयार्थ — ( ते ) आपकी ( क्वापि ) किसी भी वस्तु में ( वाञ्छा न ) इच्छा नहीं है, ( च ) और ( वाक्ववृते ) वचन प्रवृत्त होते हैं। सचमुच में ( क्वचित् काले ) किसी काल में ( तथा ) वैसा ( कः अपि नियोगः ) कोई नियोग-नियम ही होता है। ( हि ) क्योंकि ( शीतद्युतिः ) चन्द्रमा, ( अम्बुधिम् पूरयामि ) मैं समुद्र को पूर्ण कर दूँ, ( इति ) इसलिए ( उदंशुः न भवति ) उदित नहीं होता, किन्तु ( स्वयम् अभ्युदेति ) स्वभाव से ही उदित होता है।

भावार्थ — जिस प्रकार चन्द्रमा यह इच्छा रखकर उदित नहीं होता कि मैं समुद्र को लहरों से भर दूँ, पर उसका वैसा स्वभाव ही है कि चन्द्रमा का उदय होने पर समुद्र में लहरें उठने लगती हैं; इसी प्रकार आपको यह इच्छा नहीं है कि मैं कुछ बोलूँ, पर वैसा स्वभाव होने से स्वयं ही आपके वचन प्रगट होने लगते हैं।

### काव्य - ३० पर प्रवचन

३० (श्लोक)।

न क्वापि वाञ्छा ववृते च वाक्ते,
काले क्वचित्कोऽपि तथा नियोगः।

न पूरयाम्यम्बुधिमित्युदंशुः,
स्वयं हि शीतद्युतिरभ्युदेति॥

**यद्यपि जग के किसी विषय में, अभिलाषा तब रही नहीं।**
**तो भी विमल वाणी तव खिरती, यदा कदाचित् कहीं कहीं।**
**ऐसा ही कुछ है नियोग यह, जैसे पूर्णचन्द्र जिनदेव।**
**ज्वार बढ़ाने को नहीं उगता, किन्तु उदित होता स्वयमेव॥**

देखो न प्रत्येक गाथा में एक-एक दृष्टान्त नवीन प्रकार का दृष्टान्त भगवान की स्तुति में (देते हैं)। ऐसा सुमेल खा गया। यह तो पवित्र दृष्टि थी और उस लड़के को जहर चढ़ा। सर्प डसा था सर्प। एकदम (जहर) उतर गया। उसके कारण से उतरा है, हों! वहाँ। यह तो निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध से (कहा जाता है)।

**मुमुक्षु :** आपने जोर तो बहुत दिया।

**पूज्य गुरुदेवश्री :** उतर गया परन्तु उसे उतर ही जाये ऐसा वापस। ऐसे प्रकार जहाँ हों वहाँ वह पवित्रता और वहाँ ऐसा हुए बिना रहता नहीं। ऐसी मेलवाली बात यहाँ ली है न! वह उसके कारण से होता है। कहो, समझ में आया इसमें?

**अन्वयार्थ :- आपकी किसी भी वस्तु में इच्छा नहीं है,....** हे वीतराग! हे सर्वज्ञदेव! त्रिलोकनाथ गुणाधार! गुण के निधान प्रभु! आपको किसी प्रकार की इच्छा है नहीं। **और वचन प्रवृत्त होते हैं।** ओहोहो! आपका शरीर भी हजारों अनेक योजन में जाये और वाणी दिव्यध्वनि एक दिन में चौबीस घड़ी होती है। छह घड़ी सवेरे, छह घड़ी दोपहर में, छह घड़ी शाम को, छह घड़ी रात्रि में। दूसरे कितने ही हो तो कहे, बहुत लम्बा नहीं बोलेंगे। हम लम्बा नहीं करेंगे। प्रभु! यह भी क्या तेरी दशा? इच्छा कुछ नहीं और चौबीस घण्टे में जब विहार करते हो, तब अनेक योजन चलते हो और वाणी निकले तब चौबीस घड़ी। अड़तालीस घड़ी कहलाती है न? कितनी घड़ी होती है? ६०-६०। ६० घड़ी में २४ घड़ी। काम ही यह? इच्छा नहीं और इतना अधिक काम? धन्धेवाला तो इच्छा बहुत हो तो बहुत काम में रुकता है। इच्छा हो तो चौबीस घण्टे में दस घण्टे रुकता है। समझ में आया?

**मुमुक्षु :** ....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** १८ घण्टे का तो एक बार कहते थे भाई। १८-१८ घण्टे काम करते थे। नानालालभाई कहते थे न एक बार। दुकान में १८-१८ घण्टे। छह घण्टे में चार-पाँच घण्टे सोवे और उठे और एकदम काम। परन्तु प्रभु! यह तुमको इच्छा नहीं। यह तो तुम्हारी विरुद्धता का पार नहीं। इच्छा नहीं और चौबीस घण्टे ध्वनि, इच्छा नहीं और विहार में अनेक योजन का शरीर से पार होना, यह वह क्या रीति? विरोध-विरोध। परन्तु प्रभु! इस विरोध के जहर को आपने उतार दिया, कहते हैं। विरोध जरा भी है नहीं। सामंजस्यता है, यथार्थता है और वास्तविकता है।

**सचमुच में किसी काल में वैसा कोई नियोग-नियम ही होता है।** तब वाणी का .... वाणी के काल में निकलती है न, ऐसा कहते हैं। वाणी के काल में वाणी निकलती है। केवलज्ञानी तो चौबीस घण्टे हैं। परन्तु कहीं चौबीस घण्टे वाणी निकलती नहीं। उसके काल में वाणी की ध्वनि छह-छह घड़ी ऐसी निकले। इन्द्र, नरेन्द्र और जब कोई ऐसे पुण्यवन्त हों और आपको प्रश्न करे, इन्द्र, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव या गणधर, (तो) एकदम वाणी निकले उसके काल में। इच्छा नहीं और यह क्या हुआ परन्तु यह? प्रश्न पूछे और उत्तर आवे दिव्यध्वनि में, दिव्यध्वनि में। कहते हैं कि कोई ऐसा नियम अर्थात् सम्बन्ध ही कोई ऐसा है। आता है न उसमें, नहीं? स्तुति में नहीं आता? 'भवि भाजन जोग....'

**मुमुक्षु :** .....

**पूज्य गुरुदेवश्री :** हाँ, 'भवि भागन जोग...' प्रभु! भव्य के भाग्य के लिये आपका विहार और भवि के भाग्य के लिये आपकी दिव्यध्वनि है। है तो उसके कारण से, हों! दिव्यध्वनि वह तो उपादान के कारण से वाणी निकलती है। देह भी उपादान के कारण से (विहार करती है)। परन्तु वह निमित्त कथन (आवे)। प्रभु! आपको कुछ नहीं परन्तु हमारे पुण्य के कारण, प्रभु! आपका विहार और वाणी का ... होता है। आपको कोई विरोधता और एक ओर वीतरागता। राग नहीं। एक ओर इतने-इतने काम वाणी के और शरीर के।

**क्योंकि चन्द्रमा, मैं समुद्र को पूर्ण कर दूँ,....** पूर्णिमा का चन्द्र उगे। वह पूर्णिमा का चन्द्र सोलह कला से उगे। उसे ऐसी इच्छा नहीं कि मैं समुद्र में बाढ़ ला दूँ। बाढ़ कहते हैं न? क्या कहते हैं? ज्वार-ज्वार। ज्वार लाऊँ, उसकी इच्छा चन्द्र को नहीं है। **इसलिए उदित नहीं होता,....** चन्द्र समुद्र के पानी को ज्वार लाने के लिये उदय नहीं होता। परन्तु प्रभु! जहाँ चन्द्र का उदय हुआ (वहाँ) पानी में ज्वार आये बिना नहीं रहता। **किन्तु स्वभाव से ही उदित होता है।** यह दृष्टान्त दिया है न रत्नकरण्ड श्रावकाचार में। क्या कहलाता है बजाते हैं उसे? ढोलक। ढोलक को इच्छा नहीं होती परन्तु हाथ पड़े, वहाँ आवाज निकलती है। ढोलक को। क्या कहलाता है यह? नगारा-नगारा। हाथ मारे, वहाँ आवाज निकलती है। प्रभु! उसे इच्छा नहीं। उसी प्रकार आपको इच्छा नहीं, परन्तु पुण्यवन्त प्राणी आवे, वहाँ दिव्यध्वनि निकलती है।

इसी प्रकार आत्मा के अन्दर में भी पुरुषार्थ की उग्रता हो तो शक्ति की व्यक्तता हुए बिना रहती नहीं। कोई फेरफार वापस द्रव्य में होता नहीं। द्रव्य को कुछ फेरफार होता नहीं। परन्तु जितना एकाग्र हो, उस शक्ति की व्यक्तता प्रगट होती ही है। यह वह कोई विरोध तत्त्व। प्रभु! आपने कहा, वह अलौकिक बात की है। समझ में आया? यह चन्द्रमा, समुद्र को पूर्ण करूँ—ऐसी इच्छा से उदय नहीं होता, तथापि स्वभाव से उदय होता है।

**भावार्थ :- जिस प्रकार चन्द्रमा यह इच्छा रखकर उदित नहीं होता कि मैं समुद्र को लहरों से भर दूँ,....** इस समुद्र की लहरों से ज्वार कर दूँ, ऐसी इच्छा चन्द्र को नहीं है। **पर उसका वैसा स्वभाव ही है कि चन्द्रमा का उदय होने पर समुद्र में लहरें उठने लगती हैं; इसी प्रकार आपको यह इच्छा नहीं है कि मैं कुछ बोलूँ, पर वैसा स्वभाव....** उपादान, वाणी की योग्यता से निकलती है। **आपके वचन प्रगट होने लगते हैं।** अन्दर में से ध्वनि उठती है। इन्द्र और नरेन्द्र भी सुनकर.... आहाहा! बाघ और बिल्ली साथ में बैठे हों, हिरण और सिंह बैठे हों, सर्प और मोर बैठे हों, सर्प और चूहा। इच्छा नहीं और यह वाणी! प्रभु! यह वीतरागता की कोई अलौकिकता है। मानो विरोध-विरोध लगे परन्तु उसमें विरोध परिहार है। उसमें ही विरोध का परिहार है। व्यवहार एक ओर

हाँ कहे तथा दूसरी ओर कहे कि आदरणीय नहीं। निश्चय एक ही आदरणीय है। दो नय का ज्ञान करना बराबर है, परन्तु आदरणीय एक ही बात है। दो नय का विषय आदरणीय नहीं हो सकता। कहो, समझ में आया? **वैसा स्वभाव होने से स्वयं ही आपके वचन प्रगट होने लगते हैं।**

## काव्य ३१

**गुणा गंभीराः परमाः प्रसन्नाः,**
**बहुप्रकारा बहवस्तवेति।**
**दृष्टोऽयमन्तस्तवने न तेषाम्,**
**गुणो गुणानां किमतः परोऽस्ति॥**

हे प्रभु! तेरे गुण प्रसिद्ध हैं, परमोत्तम हैं, गहरे हैं।
बहु प्रकार हैं, पाररहित हैं, निज स्वभाव में ठहरे हैं॥
स्तुति करते-करते यों देखा, छोर गुणों का आखिर में।
उनमें जो नहिं कहा, रहा वह, और कौन गुण जाहिर में॥

अन्वयार्थ — ( तव ) आपके ( गुणाः ) गुण ( गंभीराः ) गम्भीर, ( परमाः ) उत्कृष्ट, ( प्रसन्नाः ) उज्ज्वल, ( बहुप्रकाराः ) अनेक प्रकार के और ( बहवः ) बहुत हैं, ( इति अयम् ) इस प्रकार ( स्तवनेन ) स्तुति के द्वारा ही ( तेषां गुणानां ) उन गुणों का ( अन्तो दृष्टः ) अन्त देखा गया है। ( अतः परः गुणानां अन्तः किम् अस्ति ) इसके सिवाय गुणों का क्या अन्त होता है? अर्थात् नहीं।

भावार्थ — स्तुति में आपके समस्त गुण कहने की सामर्थ्य नहीं है, इसलिए उनका अन्त हो जाता है — ऐसा कहते हैं क्योंकि अन्य प्रकार से उनका अन्त सम्भव नहीं है।

काव्य - ३१ पर प्रवचन

३१ (श्लोक)।

**गुणा गंभीराः परमाः प्रसन्नाः,**
**बहुप्रकारा बहवस्तवेति।**
**दृष्टोऽयमन्तस्तवने न तेषाम्,**
**गुणो गुणानां किमतः परोऽस्ति॥**

**हे प्रभु! तेरे गुण प्रसिद्ध हैं, परमोत्तम हैं, गहरे हैं।**
**बहु प्रकार हैं, पाररहित हैं, निज स्वभाव में ठहरे हैं॥**
**स्तुति करते-करते यों देखा, छोर गुणों का आखिर में।**
**उनमें जो नहिं कहा, रहा वह, और कौन गुण जाहिर में॥**

सब हृदय के उद्‌गार व्यक्त किये हैं, हों! क्या कहते हैं?

**अन्वयार्थ :- आपके गुण गम्भीर,....** ऐसे गम्भीर। पाठ में '**गंभीराः**' अर्थ में कहा गम्भीर.... गम्भीर। कहाँ-कहाँ स्वभाव अल्प क्षेत्र और अनन्त गुणों की गम्भीरता। जैसे फुंसी—यह फोड़ा होता है न फोड़ा। गम्भीर फोड़ा नहीं कहते? यह फोड़ा गम्भीर है। उसमें वाट (बत्ती) जाती है परन्तु ठेठ नहीं जाती, ऐसा नहीं कहते डॉक्टर? फोड़ा होता है न फोड़ा? गम्भीर-गम्भीर। क्या कहते हैं उसे दूसरी भाषा में? ...बस! वह पर... वह फोड़ा भरे और निकले, भरे और निकले। तो गम्भीर कहते हैं। प्रभु! आपकी पर्याय में सब वस्तु भले परिणम गयी, परन्तु वस्तु में, तेरी इतने गुण की गम्भीरता अगाध... अगाध.... तेरी गम्भीरता। उसी प्रकार आत्मद्रव्य के अनन्त गुणों की अगाध गम्भीरता।

**उत्कृष्ट, उज्ज्वल....** वह गम्भीर है, अनन्त गुण उत्कृष्ट हैं और उज्ज्वल अर्थात् निर्मल हैं और **अनेक प्रकार के....** वापस अनेक प्रकार—ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्द, अस्तित्व, वस्तुत्व, स्वच्छत्व इत्यादि। ऐसे **बहुत हैं, इस प्रकार स्तुति के द्वारा ही उन गुणों का अन्त देखा गया है।** हमने तो स्तुति करके ऐसा करके मानो, अन्त पाया कहते

हैं। परन्तु प्रभु! **इसके सिवाय गुणों का क्या अन्त होता है?** उन गुण का अन्त तो तुझमें सब है, ऐसा अन्त आ जाता है। बस, हो गया। हमारी वाणी में कहीं पार नहीं पड़ता। समस्त गुणों में—तुझमें समा जाये, वहाँ अन्त है। समझ में आया?

**भावार्थ :- स्तुति में आपके समस्त गुण कहने की सामर्थ्य नहीं है,....** समझ में आया? **इसलिए उनका अन्त हो जाता है....** वहाँ वाणी में अन्त हो जाता है। दूसरे प्रकार से कहें तो वाणी द्वारा, विकल्प द्वारा आपके अनन्त गुण जहाँ गिनने लगे, वहाँ अन्त नहीं आता। अनन्त गुण उसमें है। जहाँ आत्मा है, वहाँ अनन्त गुण और वहाँ अन्त आ गया। यह उसकी उत्कृष्ट भक्ति और स्तुति कहने में आती है। वह अनन्त गुण का स्वीकार वहाँ उसे अन्त आया। श्रद्धा-ज्ञान में उसका भान हुआ। अनन्त गुण का एकरूप ऐसा चैतन्य वाणी द्वारा, विकल्प द्वारा पार नहीं पड़ता। तैतीस-तैतीस सागर तक सर्वार्थसिद्धि के देव सम्यग्दृष्टि बारह अंग के पढ़े हुए, वे चर्चा करते-करते तैतीस सागर चले जायें। तैतीस सागरोपम किसे कहते हैं? समझ में आया? कितना काल!

एक पल्योपम, असंख्यवें भाग में असंख्यात अरब वर्ष जाते हैं। एक पल्य के असंख्यवें भाग में असंख्यात अरब जाते हैं। अर्थात् ऋषभदेव भगवान का ८४ लाख (पूर्व) का आयुष्य—८४ लाख पूर्व का, वह पल्य के असंख्यवें भाग में ८४ लाख पूर्व असंख्य जाते हैं। ऐसे-ऐसे दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम का एक सागरोपम। ऐसे तैतीस सागर तक क्षायिक समकिती और बारह अंग के पाठक देव वहाँ चर्चा करते हैं। अन्त में तो प्रभु अन्ततः तो विकल्परहित स्वरूप में ही आयेंगे। इसके अतिरिक्त पार—अन्त आवे, ऐसा नहीं है। आ गया कि अन्दर में इतने अनन्त गुण हैं, ऐसी श्रद्धा और ज्ञान हुआ, वहाँ सब अन्त आ गया। बाकी विकल्प से अन्त आवे, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

**स्तुति में आपके समस्त गुण कहने की सामर्थ्य नहीं है, इसलिए उनका अन्त हो जाता है....** वाणी में कहते हैं परन्तु वास्तव में अन्दर में है। **अन्य प्रकार से उनका अन्त सम्भव नहीं है।** उस गुण का अन्त तो प्रभु तूने लिया। तुझमें जितने हैं तूने जाने। और इसके अतिरिक्त वाणी में उनकी गिनती से कहा जा सके, ऐसा नहीं है। इस प्रकार वचन की, विकल्प की स्तुति छोड़कर निर्विकल्प स्तुति में समा जाना, उसे भगवान की स्तुति कहा जाता है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)